अच्छी शिक्षा के बहाने

शरद चन्द्र बेहार

'शिक्षा' और 'चिड़िया' शब्दों में एक समानता है। ये दोनों एक वचन भी हैं और बहुवचन भी। हम 'शिक्षियां' और 'चिड़ियों' नहीं कहते। मेरा इरादा कोई व्याकरण पढ़ाने का नहीं है। पर प्रारंभ में ही यह रेखांकित करना चाहता हूं कि अच्छी शिक्षा को यदि एक वचन के रूप में लिया जा रहा है तो बड़ी गलती है। अच्छी शिक्षा एक चीज नहीं है। बहुत सारी अच्छी शिक्षा होती है। शिक्षा में काम करने वालों को यह अच्छी तरह आत्मसात कर लेना चाहिए कि अच्छी शिक्षा की एक परिभाषा, एक उदाहरण, एक मॉडल नहीं तलाश जा सकता क्योंकि अच्छी शिक्षा के विविध रूप होते हैं।

इन विविध रूपों की चर्चा के पहले शिक्षा की सामान्य अवधारणा को भी स्पष्ट करना होगा। बंदर बहुत सारी बातें अपने जीवन में सीखते हैं। इस तरह असंख्य प्राणी हैं जो अपने जीवन में बहुत कुछ सीखते हैं। उनके सीखने के लिए कोई विद्यालय, महाविद्यालय या विश्वविद्यालय स्थापित नहीं होता। मनुष्य भी सीखने वाला प्राणी है। जन्म से मृत्यु तक वह सीखता रहता है अर्थात् शिक्षा ग्रहण करता रहता है। अभिमन्यु की पौराणिक कथा को छोड़ भी दें, तो आज वैज्ञानिक शोधों से भी निष्कर्ष निकला है कि गर्भ में भी बच्चा सीखता है। यह तो लगभग स्थापित हो गया है कि बच्चा पैदा होते ही अपनी मां की आवाज को दूसरी आवाजों से फर्क कर लेता है। ऐसे में अच्छी शिक्षा का मतलब केवल संस्थागत अच्छी शिक्षा मानना बड़ी भूल होगी।

स्पष्ट है कि शिक्षा की अवधारणा किसी संस्था में दी जाने वाली शिक्षा से बहुत अधिक व्यापक है। अच्छी शिक्षा को परिभाषित करते समय यदि इसे नजरअंदाज किया गया तो बड़ी गलती होगी। जीवन का हर वक्त का हर क्षण, हर पहलू जाने–अनजाने शिक्षा की प्रक्रिया से गुजर रहा है। इसे समझने और स्वीकार कर लेने से यह बात साफ हो जाएगी कि शिक्षा निरंतर प्रवाहमान है। शिक्षा वह चिड़िया है जो स्वच्छंद विचरण करती है। संस्था–विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय आदि के पिंजड़े में शिक्षा को बंद कर देना और फिर उसी के अंदर अच्छी शिक्षा की एक तलाश करना बड़ा भटकाव है। जो चिड़िया पिंजड़े में बंद है, वह कभी अच्छी चिड़िया नहीं हो सकती। चिड़िया की अच्छाई तो उसके उड़ने की नैसर्गिक क्षमता से ही जाहिर होती है। मेरा विश्वास है कि जो शिक्षा केवल संस्था की चहारदीवारी के अंदर कैद है, वह अच्छे की श्रेणी में आ ही नहीं सकती। अच्छी शिक्षा का पहला गुण है, जिंदगी से जुड़ी शिक्षा। यह हो सकता है कि संस्था में कोई व्यवस्थित अध्ययन–अध्यापन हो उसे अच्छा होने के लिए यह जरूरी है कि वहां पढ़ रही बच्ची बाहर आते ही विद्यार्थी बन जाए। मैंने जान–बूझकर उल्टा लिखा है। हम बच्ची को स्कूल में विद्यार्थी और स्कूल के बाहर बच्ची मानते हैं। अच्छी शिक्षा वह है जहां उसके बचपन को संस्था में पूरी तरह स्वीकार किया जाए, उसके बचपन की इज्जत करते हुए शिक्षा हो और संस्था से बाहर निकलने के बाद भी वह बच्ची हो और विद्यार्थी हो।

इसलिए अच्छी शिक्षा का दूसरा गुण होगा– बच्ची और विद्यार्थी को विभाजित न किया जाए। ऐसी शिक्षा जो शिक्षण संस्था में बच्ची और विद्यार्थी की अविभाजिता को स्वीकार करे, अच्छी शिक्षा होने के

एक पहलू को पूरा करती है। यदि वहां दी जा रही शिक्षा ऐसी है कि बच्ची संस्था से बाहर निकलने के बाद भी बच्ची और विद्यार्थी की अविभाजिता में पूरी डूबी हुई जिंदगी गुजारती है तो अच्छी शिक्षा के दूसरे पहलू की भी पूर्ति हो जाती है। यदि स्कूल में शिक्षा दी जाती है और बाहर जाते ही शिक्षा की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है तो वह शिक्षा अच्छी कदापि नहीं हो सकती। केवल संस्था के अंदर दी जाने वाली शिक्षा की गुणात्मकता का आकलन करना भ्रामक और अपूर्ण है।

यदि बच्ची के बचपन को ध्यान में रखा जाता है तो शिक्षा एक शुष्क बौद्धिक क्रिया या प्रक्रिया नहीं हो सकती। उसमें स्नेह, वात्सल्य और देखभाल का सशक्त पुट अनिवार्य है। अच्छी शिक्षा बौद्धिक से अधिक भावनात्मक प्रक्रिया है, भावनाओं का, दिल का मिलन है। जब क्रिया–आधारित या खेल–खेल में शिक्षा की पद्धति की वकालत की जाती है तो उस दृष्टिकोण में इस शुष्क बौद्धिक प्रक्रिया को आनंददायक बनाने का इरादा ही व्यक्त होता है। कड़वी चीज को गुड़ में मिलाकर देने की रणनीति प्रकट होती है। दरअसल ऐसा करना अच्छी शिक्षा की आत्मा के सार को नजरअंदाज करना है। इसका सार है– प्रेम की अजस्त्र धारा का निरंतर प्रवाह, शिक्षा के दोनों सहभागी–शिक्षक और विद्यार्थी के बीच आजन्म भावनात्मक रिश्ता कायम करता है। शिक्षक–विद्यार्थी अनुपात 1:30 या 1:20 करने के पीछे जो तर्क दिए जाते हैं, वे सतही हैं मेरी राय में। उसका मुख्य आधार, प्रेमपूर्ण मधुर भावनात्मक संबंध के रूप में होना चाहिए।

जिन शालाओं में स्नेहसिक्त मधुर वातावरण में गतिविधियों या खेलों का सहारा लेकर सीखने की प्रक्रिया चलती है वहां शिक्षा, शाला की सीमाओं से बाहर निकलते ही रुक नहीं जाती। क्योंकि प्रेम और माधुर्य दीवारों के रोके नहीं रुकते, फौलादी बाधाओं को भी सहजता से पार कर लेते हैं। जीवन के हर पल, हर कदम पर, हर अनुभव से सीखने की मनोवृत्ति के बीज ऐसे वातावरण में ही बोए जाते हैं। ऐसे में ही वे पनपते हैं, पल्लवित–पुष्पित होते हैं। संस्थागत औपचारिक शिक्षा, संस्था के बाहर की अनौपचारिक शिक्षा, औपचारिकेतर शिक्षा की विभाजक रेखाएं लुप्त हो जाएं तभी अच्छी शिक्षा होगी। ऐसे में स्कूल रूपी पिंजड़े में बंद शिक्षा उन्मुक्त आसमान में अनंत अंतरिक्ष तक और उससे भी आगे, अनायास उड़ने लगे तभी वह अच्छी शिक्षा होती है।

औपचारिक होमवर्क (गृहकार्य) न देना अच्छी शिक्षा की अगली अनिवार्य शर्त है। घर में माता–पिता, भाई–बहिन, दादी–दादा, नानी–नाना के साथ रहते हुए जो सीखा जा सकता है, उसके महत्त्व को कम आंकते हुए, स्कूल में सीखी बातें और कौशल को आगे बढ़ाने या अभ्यास के लिए काम सौंपना, खराब शिक्षा का लक्षण है। वह शिक्षा की संकुचित दृष्टि का परिचायक है। ''पिंजड़ा'' के अपने रूपक को आगे बढ़ाते हुए यह स्पष्ट करना चाहूंगा कि मेरी समझ में स्कूल का भौतिक स्वरूप ही पिंजड़ा नहीं हैं वरन् उसकी अवधारणा में शामिल हर तत्त्व शिक्षा को कैद करने की सलाखें हैं। 'होम वर्क' की अवधारणा और प्रथा तो निर्धारित पाठ्यक्रम की उपज है। यह भी शिक्षा की चिड़िया को न उड़ने देने का एक बंधन, सलाख है। यह मानना कि पाठ्यक्रम में जो है उसे सीखना 'शिक्षा' है और उसके बाहर की चीजें सीखना 'शिक्षा' नहीं है। खराब शिक्षा, कैदी शिक्षा की अवधारणा का अंग है। अच्छी शिक्षा वह है, जो पाठ्यक्रम की कृत्रिम विभाजक रेखाओं को मिटा दे। हर सीख को शिक्षा का उतना ही महत्त्वपूर्ण अंश माने, जितना पाठ्यक्रम के अंदर की सीख। इस दृष्टि से, पाठ्यक्रम का निर्धारण नहीं होना चाहिए। जरूरत के मुताबिक, प्रसंग और अपने आप आने वाले अनुभवों और घटनाओं के जरिए वह सब सीखा जा सकता है, जो पाठ्यक्रम के निर्धारण के जरिए प्राप्त करने की कोशिश की जाती है। पाठ्यक्रम से मुक्ति अच्छी शिक्षा का अगला लक्षण है। निर्धारित पाठ्यक्रम से मुक्ति के साथ ही, गृहकार्य की सही परिभाषा भी की जा सकती है। इस संदर्भ में जमीन से जुड़े शिक्षाविद् स्वर्गीय श्याम बहादुर 'नम्र' याद आते हैं, जिन्होंने पाठ्यक्रम आधारित 'गृहकार्य' की अवधारणा पर व्यंग्य करते हुए सही गृहकार्य की महिमा का प्रतिपादन किया था। गृहकार्य का तात्पर्य है और होना चाहिए, घर के दैनन्दिन के काम में सहभागिता करते हुए दक्षता हासिल करना। कुछ स्कूल लिंग–भेद से परे जाकर बच्चों को पाक कला स्कूल में सिखाने में गौरव महसूस करते हैं, पर यह कभी नहीं देखते–सोचते कि घर में खाना बनाना सीख लेना और बनाते रहना बेहतर गृहकार्य है। घर में झाड़ू पोंछा कर लेना भी अच्छा गृहकार्य है। श्रम की प्रतिष्ठा की सीख भी देता है गृहकार्य। मेरी अच्छी शिक्षा में घर के हर काम को सीख लेना और करते रहना एक लक्षण है।

पाठ्यपुस्तकों के बंधन से मुक्ति को पाठ्यक्रम से मुक्ति के तार्किक परिणिति के रूप में देखा जा सकता है। पाठ्यपुस्तक ज्ञान, विचार, सोचने समझने की क्षमताओं और दायरे को बहुत संकुचित कर देती है। व्यक्तिगत अनुभव को तर्कसंगत आधार मानने की भूल मैं नहीं कर सकता। साथ ही, उसे पेश करने के लोभ का संवरण भी नहीं कर पा रहा हूं। स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय की पढ़ाई के दौरान मैंने 10 प्रतिशत समय पाठ्यपुस्तकों को दिया और 90 प्रतिशत इतर पुस्तकों को जिसमें उपन्यास, कहानियां, कविताएं, नाटक, यात्रा–वृत्तांत आदि सभी विधाएं शामिल हैं। जीवन में अपनी उपलब्धियों का श्रेय इन्हीं इतर पुस्तकों को देता हूं। मेरी तरह और कई लोगों को जानता हूं, जो पाठ्यपुस्तकों की गीता, बाइबिल, कुरान की तरह स्थापित महिमा की हेठी करने की वजह से ही जीवन में कुछ कर पाए। जहां पाठ्यपुस्तकों का महिमामंडन न हो, जहां उन्हें चुनौती देने की मनोवृत्ति और साहस दिया जाए और इसे आदत बना दी जाए, वहां अच्छी शिक्षा का वास होता है।

जो शिक्षक पाठ्यपुस्तक की सीमाओं को लांघकर विद्यार्थियों को अपने साथ उन्मुक्त अनंत आकाश में ले उड़ता है, वह अच्छी शिक्षा का सूत्रधार है।

इस सिलसिले में मुझे हरिवंशराय बच्चन याद आते हैं। उन्होंने अपनी कविताओं के एक संग्रह की भूमिका में अपनी कविताओं को पाठ्यपुस्तकों में शामिल किए जाने पर नाराजगी व्यक्त की थी। उनका मानना था कि पाठ्यपुस्तकों में विवशता से उनकी रचनाओं को पढ़ने की बाध्यता के कारण विद्यार्थी उनकी अन्य

रचनाओं से विमुख हो जाते हैं और उन्हें पाठकों की कमी का सामना करना पड़ा है। उनकी समझ है कि जितने वे पाठ्यपुस्तक से बाहर रहे, उतने ही वे अधिक लोकप्रिय रहे, उनकी किताबें अधिक संख्या में बिकीं।

सार यह है कि पाठ्यपुस्तकों के बाहर के अनंत रचना–संसार से जोड़ने वाली शिक्षा अच्छी शिक्षा है।

मनोवैज्ञानिकों और शिक्षाविदों द्वारा लगभग एकमत से यह राय रखने के बावजूद कि हर व्यक्ति की सीखने की गति, ढंग, माध्यम और विषय–वस्तु में बहुत भिन्नता होती है, सब विद्यार्थियों से प्रतिवर्ष, हर विषय में एक निश्चित प्रगति और उपलब्धि की अवैज्ञानिक मांग, एक और पिंजड़ा या बंधन है जिससे मुक्ति अच्छी शिक्षा का अगला लक्षण है। जब हर बच्ची अपनी मर्जी से अपनी रुचि के अनुसार अपनी रफ्तार से अपना चुकी चीजें पढ़ सके, लिख सके, सीख सके तो मैं मानूंगा कि वह शिक्षा की उड़ती चिड़िया में सवार होकर अंतरिक्ष की सैर पर निकली है। इस तरह की बंधनहीन शिक्षा ही अच्छी शिक्षा है। प्रतिदिन शाला आने की अनिवार्यता भी एक पिंजड़ा है, सलाखें हैं, बंधन है। यदि जिंदगी के हर पल, हर जगह सीखने के लायक बच्ची है तो दीवारों के बीच की कक्षा में सीखने की बाध्यता ही क्यों रहे? क्यों न सीखने वाले को निर्णय करने दिया जाए कि कब, कहां, क्या कैसे सीखना चाहता है। पाठशाला जिस सीख के लिए और उपयुक्त है उसके लिए तो विद्यार्थी स्वयंमेव खिंच कर चला आएगा। पाठशाला को अपनी उपयोगिता, उपादेयता और आकर्षण को सिद्ध करना और स्थापित करना चाहिए। बाध्यता के भरोसे पाठशालाएं नहीं चलानी चाहिए। अच्छी शिक्षा वह है जहां बच्चे मर्जी से पाठशाला जाएं, मजबूरी से नहीं।

अच्छी शिक्षा वह है जिसमें अच्छी तरह से सीखना विद्यार्थी के हित में है और विद्यार्थी यह जानता समझता है। इसलिए वह स्वयं अपने सीखने की गुणात्मकता का आकलन करता है, अपना स्वयं मूल्यांकन करता है बेहतर जानने, सीखने के उद्देश्य से हर आकलन के बाद अधिक परिश्रम करती है, सीखने के नए तरीकों एवं रणनीतियों को अपनाना चाहती है, अपनी भूलों, गलतियों, अशुद्धियों को सुधार कर आगे बढ़ना चाहती है। वह अपने मूल्यांकन से संतुष्ट न हो तो अपने साथियों या शिक्षकों से भी मदद ले सकती है। मुख्य बात है कि अपना मूल्यांकन, स्वयं चाहती है, अपने हित में मानती और समझती है।

शिक्षक, परीक्षक, निरीक्षक विद्यार्थी का मूल्यांकन करना जरूरी समझते हैं। पर विद्यार्थी उससे डरती है, परेशान होती है। येनकेन प्रकारेण, परीक्षक के आंखों में धूल झौंककर भी यदि यह जरूरी हो जाए तो अपने को सफल सिद्ध करना चाहती है। अधिकतम अंक प्राप्त किया हुआ बताना चाहती है तो वह खराब शिक्षा है। ऐसी शिक्षा अच्छी कदापि नहीं हो सकती। अपने लिए नहीं वरन् दुनिया को दिखाने के लिए जहां सफलता, अच्छे अंक, अच्छी श्रेणी प्राप्त करने की इच्छा हो, वह अवश्यमेव अच्छी शिक्षा नहीं है।

इसका एक पहलू और है। मूल्यांकन के जरिए अपने ज्ञान, अपनी योग्यता को जान, उसमें सुधार की उत्कृष्ट इच्छा का होना अच्छी शिक्षा का लक्षण है। मूल्यांकन के जरिए दूसरों से तुलना करना, उनसे बेहतर होने की कोशिश करने के लिए प्रेरणा पाना दोयम दर्जे की शिक्षा का लक्षण है उत्तम शिक्षा का नहीं।

यहां मूल प्रश्न यह है कि शिक्षार्थी के बजाए शिक्षा नियम (जिसमें शिक्षक, शिक्षा प्रशिक्षक, नीति–निर्माता, माता–पिता और सारा समाज शामिल है) परीक्षा, विद्यार्थी के मूल्यांकन और उनके आपस की तुलना में दिलचस्पी क्यों रखते हैं और उसे क्यों जरूरी समझते हैं? यह एक विचारणीय मसला है, जिसे हमें समझना होगा।

उद्देश्य आधारित शिक्षा

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा नियंताओं की मुख्य दिलचस्पी और जिम्मेदारी मूल्यांकन में है। इससे यह निष्कर्ष निकालना अनुचित नहीं होगा कि शिक्षा के

उद्देश्यों का निर्धारण उनके द्वारा किया जाता है। हमने प्रारंभ में ही अच्छी शिक्षा के विविध रूप होने का जिक्र किया था। यहां 'अच्छी' का मतलब पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति से होता है, वहां उद्देश्यों की भिन्नता के आधार पर शिक्षा के विभिन्न मायनों में भी भिन्नता होगी। आज्ञापालक व्यक्ति बनाने के उद्देश्य से रचित शिक्षा, विद्रोही पैदा करने वाली शिक्षा से कई मायनों में भिन्न होगी।

संसार भर में आज प्रचलित संस्थागत औपचारिक शिक्षा व्यवस्था, शिक्षा नियंता द्वारा डिजाइन की गई है। इसमें उद्देश्य कथन स्पष्ट रूप से किया जाता है। इस तरह के कथन में उपयोग किए गए अलंकारिक मुहावरे, घुमावदार अभिव्यक्तियों के तह में जाए, तो केवल दो मुख्य श्रेणी के उद्देश्य नजर आएंगे। एक तो, विद्यमान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था का पोषण है जिसमें उच्चतम स्थान पाने की योग्यता को विकास के कुछ लच्छेदार मुहावरों में रखा जाता है। निर्विवाद सार यह है कि उसकी यथास्थिति को बनाए रखना है और विद्यार्थी को उसमें फिट होने लायक बनाना है।

दूसरी श्रेणी के उद्देश्य में, आज की स्थिति से असंतोष पैदा कर, एक नए भिन्न मूल्यों पर आधारित बेहतर सामाजिक–आर्थिक–राजनैतिक व्यवस्था के लिए विद्यार्थी को तैयार करने का आग्रह होता है।

पहली श्रेणी के उद्देश्य के लिए अच्छी शिक्षा होगी यदि समाज के लिए उपयोगी सदस्य, अच्छे नागरिक और अर्थव्यवस्था में अच्छे रोजगार पा सकने वाले लोग निकलते रहें। व्यावसायिक तकनीकी और प्रोफेशनल शिक्षा में बुनियादी उद्देश्य यही होता है। वहां भी नवाचार और मौलिकता पर आग्रह होता है पर स्पष्टतः वह आज के ढांचे के दायरे के अंदर ही होता है। आज विश्वभर में इसी का बोलबाला है। भारतीय विश्वविद्यालय आयोग द्वारा उदार शिक्षा– बी.ए., बी. एससी. जैसे पाठ्यक्रमों के बजाए रोजगारपरक पाठ्यक्रमों पर जोर देने की नीति को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। आज की व्यवस्था में निहित अन्याय और असमानता की कुरूपता को हर विद्यार्थी को बेहतर अवसर उपलब्ध कराने के वादे और संभावना के आकर्षक मुखौटे के नीचे ढंक दिया जाता है। भू–मंडलीकरण की विश्वव्यापी प्रवृत्ति का पोषण आज इस श्रेणी के उद्देश्य द्वारा हो रहा है। यह वही व्यवस्था है जिसमें ऑक्सफेम के अध्ययन के अनुसार विश्व के केवल एक फीसदी परिवारों के पास संसारभर के 46 फीसदी लोगों के बराबर सम्पत्ति है।

इस विरूपता और विसंगति को छिपाने के लिए सारी शिक्षा व्यवस्था में दूसरी श्रेणी के उद्देश्यों को भी शामिल कर लिया जाता है।

इस श्रेणी में न्याय, समानता जैसे आदर्शों की दुहाई दी जाती है। दूसरी श्रेणी के उद्देश्यों में आज की व्यवस्था को चुनौती देते हुए एक बेहतर समाज की स्थापना के लिए शिक्षा की रचना का दावा किया जाना बिरला ही है।

दोनों प्रकार के उद्देश्यों में यथास्थिति बनाए रखने और बदलाव का मिश्रण आम बात भी है और भ्रामक भी। किसी भी शिक्षा व्यवस्था के असली उद्देश्यों का पता तो उसकी कार्यरत व्यवस्था से चलता है। इसको समझने का एक निर्णायक मापदंड है, उसकी मूल्यांकन व्यवस्था। जिस मूल्यांकन पद्धति में केवल जानकारी या ज्ञान या विचार–शक्ति की परीक्षा हो वह स्पष्टतः नए मूल्यों वाले समाज–रचना से कोई संबंध नहीं रखती। भारतीय शिक्षा व्यवस्था की मूल्यांकन पद्धति यही है। पर भारत इस मायने में अकेला नहीं है। विश्व के उन एक प्रतिशत जैसे लोगों के अदृश्य इशारों से, जो विश्व के 46 प्रतिशत लोगों के बराबर सम्पत्ति रखते हैं, लगभग सारी दुनिया की शिक्षा व्यवस्था यथास्थितिवादी हो गई है।

इस हालत में आज अच्छी शिक्षा का एक ही अर्थ है– आज के समाज और अर्थव्यवस्था में बेहतर से बेहतर स्थान पाने लायक बन जाना, परीक्षा के अंकों और

श्रेणियों का खेल इसी उद्देश्य में आकर सिमट गया है। ऐसी स्थिति में अच्छी शिक्षा के विविध रूप होने की संभावना की चर्चा जो प्रारंभ में हुई थी उसे सैद्धांतिक वास्तविकता के रूप में ही देखा जाना होगा। आज की ठोस धरातल की वास्तविकता में अच्छी शिक्षा के इंद्रधनुषी रंग, व्याकुल करने वाली ग्रीष्मऋतु की सूर्य की किरणों में ही बदलकर रह गई हैं। अच्छी शिक्षा सोने के पिंजड़े में बंद होकर छटपटा रही है, फड़फड़ा रही है। अच्छी शिक्षा की चर्चा में विचारवान लोग उसे इस दयनीय हालत में छोड़कर आगे नहीं बढ़ सकते। उसे खुले आसमान में विचरते हुए इंद्रधनुषी रंग से तादात्म्य होने के लिए स्वच्छंद करना होगा।

किसी भी शिक्षा पद्धति या शिक्षा व्यवस्था से शिक्षित सभी विद्यार्थी एक से नहीं होते, उनमें बड़े पैमाने पर भिन्नता होती है। इतना ही क्यों मुझे यह स्वीकार करने में भी कोई हिचक नहीं है कि एक ही संस्था से, उन्हीं शिक्षकों द्वारा पढ़े–लिखे विद्यार्थी भी एक सांचे में ढले, एक आकार–विचार, मानसिकता, आदर्शों से प्रेरित, आकांक्षाओं के लिए प्रयत्नशील नहीं होते। इन्हें परस्पर विरोधी बयान भी माना जा सकता है। विरोधी बयान को इतनी सहजता और खुले दिल से मान लेने के बाद भी मैं अपने उत्तेजक सख्त बयान पर कायम हूं। उसे सरासर गलत मानने वाले कृपया, थोड़ा धैर्य रख आगे पढ़ने का कष्ट भी कर लें। मेरी इस दृढ़ता का औचित्य और आलोचकों को भी स्वीकार होने लायक तर्क मैं पेश कर रहा हूं।

सर्वप्रथम मैं यह स्पष्टीकरण दे दूं कि 'शिक्षा व्यवस्था ऐसी होती है', यह कदापि नहीं कह रहा हूं। मैं तो केवल नियंताओं की मंशा स्पष्ट कर रहा हूं। जिस सीमा तक ऐसा नहीं हो पाता वह उनकी असफलता है। यह असफलता कई कारणों से होती है जो कि आगे स्पष्ट होंगे।

पहला कारण व्यवस्था की अपूर्णता है। व्यवस्था का अर्थ ही है अव्यवस्था– उपद्रव को मिटाने के लिए सीमाओं का निर्धारण करना, एक पथ का, पद्धति का, तरीके का, जिसमें हर बार वही और उसी तरह हो। अव्यवस्था को नियंत्रित करने का अस्त्र है व्यवस्था। शिक्षा के संदर्भ में देखें तो एक बालक के मनमर्जी से सीखने, जब चाहें तब सीखने की अव्यवस्था को एक पाठ्यपुस्तक, एक संस्था, प्रोफेशनल शिक्षक, निर्धारित समय, गति, सोपानों (कक्षा) और फिर पूर्व निर्धारित परीक्षा के जरिए सर्टिफिकेशन जैसे अस्त्रों द्वारा व्यवस्थित करने की कोशिश नहीं है तो क्या है? इस अर्थ में क्या व्यवस्था के उद्देश्य को नियंत्रण का उद्देश्य कहना अनुचित या असंगत है? जहां व्यवस्था हुई वहां नियंत्रण की कोशिश है; चाहे प्रत्यक्ष हो या प्रच्छन्न। हम इसे इंसानों का सौभाग्य या अयोग्यता कहें कि हमारे द्वारा निर्मित कोई भी व्यवस्था संपूर्ण या त्रुटिविहीन नहीं होती। प्रबंधन वैज्ञानिक जो केवल इन्हीं उद्देश्यों में शोध और अध्ययन केंद्रित करते हैं, वे इस चुनौती की सफलता से सामना नहीं कर पाए।

दूसरा कारण है शिक्षा व्यवस्था का संकुचित दायरा। विद्यालय मात्र कुछ घंटे हमारी (विद्यार्थी की) जिंदगी को प्रभावित, निर्धारित और नियंत्रित कर सकते हैं। लेकिन उसकी शिक्षण संस्था में और रूढ़ अर्थ में घर पर गृहकार्य करने और ट्यूशन, कोचिंग कक्षाओं में जाने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति, मेरे लिए चिंताजनक है। क्योंकि इसके जरिए विद्यार्थी अपनी जिंदगी को और अधिक नियंत्रण में स्वेच्छा से देता है। स्वेच्छा से कहना तो गलत होगा, वास्तव में वह परीक्षा की प्रतियोगिता में होने के दबावों के कारण ऐसा करता है।

सच कहा जाए तो परीक्षा नियंत्रण का सबसे सफल अस्त्र सिद्ध हुआ है। मैं मित्रों के बच्चों को पाठ्येतर पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रेरित करता रहा हूं। ताकि वे शिक्षा व्यवस्था की जकड़न से किसी सीमा तक मुक्ति पा सकें। इसमें मेरी सफलता काफी सीमित और निराशाजनक रही है।

परीक्षा के कठोर दूरगामी बंधन के चलते न बच्चे पुस्तकों को पढ़ने को तैयार थे न उनके माता–पिता। प्रोत्साहन तो दूर की बात, इजाजत ही नहीं देते थे।

इसका मतलब इतना ही होता है कि विद्यार्थी का अनुभव पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के साथ संस्था की कक्षाओं, ट्यूशन तथा कोंचिंग कक्षाओं के सीमित दायरे में सिमट कर रह जाता है। सौभाग्यवश शेष समय के अनुभव को हमारी शिक्षा व्यवस्था नियंत्रित नहीं कर पाती। टेलिविजन, रेडियो, पास–पड़ोस, मित्रों अन्य बुजुर्गों, फिल्मों, नाटकों जैसे अभिव्यक्ति के अन्य माध्यमों से विद्यार्थी क्या सीखते हैं, किस तरह के अनुभव प्राप्त करते हैं, यह शिक्षा के नियंत्रण में न होने की वजह से शिक्षानियंता विद्यार्थियों को पूरी तरह मानसिक गुलाम बनाने के उद्देश्य में सफल नहीं हो पाते।

तीसरा कारण, इंसान के व्यक्तित्व के निर्माण में आनुवंशिकी की जो भूमिका होती है वह शिक्षा व्यवस्था के नियंत्रण के परे है।

चौथा कारण है, मनुष्य की प्रकृति में अंतर्निहित स्वतःस्फूर्त पहल करने का गुण। दार्शनिकों ने कई शताब्दियों से इंसान की स्वतंत्र इच्छाशक्ति के रहस्य को समझने की कोशिश की है। यह विवाद अभी भी बरकरार है कि किस सीमा तक एक व्यक्ति अपनी स्वतंत्र इच्छाशक्ति से पहल करता है, कर्म करता है और उसका फल–सकारात्मक और नकारात्मक और किस सीमा तक वह जो भी करता है, वे पूर्व निर्धारित हैं। यह तो लगभग सर्वमान्य है कि स्वतंत्र इच्छाशक्ति का कुछ न कुछ दायरा है। कुछ लोग इसे बहुत असीम मानते हैं तो कुछ बहुत संकुचित। पूर्व जन्म और कर्मबाध्यता पर विश्वास करने वाले भी इसके अस्तित्व से इंकार नहीं करते। इस स्वतंत्र इच्छाशक्ति के चलते, शिक्षा नियंता अपनी ओर से कितनी भी अच्छी व्यवस्था करें, इस रहस्यमय अस्तित्व को न तो समझ पाते हैं और न ही नियंत्रित कर पाते हैं। परिणामस्वरूप बहुत सूझ–बूझ और अत्यंत कुशलता से रची गई शिक्षा व्यवस्था भी पूरी तरह विद्यार्थी को रोबोट बनाने में कामयाब नहीं होती।

पांचवा कारण, मनुष्यों के मनोविज्ञान को समझने और प्रभावित करने के तरीकों की आज की हमारी अज्ञानता है। हम अभी भी नहीं जानते हैं कि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने वाले कितने असंख्य तत्व हैं। उनमें से कौन से बहुत प्रभाव वाले हैं और कौन से कम। किस तरह के तत्व एक–दूसरे के प्रभावों को नकारते हैं। इतना ही नहीं, ये तत्व शिक्षा व्यवस्था बनाने वालों के नियंत्रण में भी नहीं हैं। किसी व्यक्ति के आदर्श, आकांक्षाओं, मनोवेगों, रागात्मक प्रवृत्ति, दृष्टिकोण, विश्वदृष्टि और चरित्र को अपनी इच्छा के अनुसार ढालने के लिए आवश्यक ज्ञान और कौशल को मानवजाति अभी तक समझ नहीं पाई है। इसीलिए शिक्षण संस्थाएं केवल जानकारी या ज्ञान पर जोर देती हैं। यह मनुष्य को एकरूप, एक सांचे में ढले हुए बनाने की प्रवृत्ति का विरोध करने वाले, हम जैसे लोगों के लिए विचाराधीन ही है। मनोविज्ञान और उससे संबंधित शास्त्र अभी अपूर्ण और अधूरा है। उनकी कोशिशें चल रही हैं। इस रास्ते में और अधिक प्रभावी ज्ञान और तौर–तरीके हासिल किए जाएं। छठवां, विवादास्पद कारण– विभिन्न विचारधाराओं और दृष्टि रखने वाले लोगों का शिक्षा को अपने नियंत्रण में लेने के लिए आपस में विवाद और संघर्ष में निरंतर लगे रहना है। राजनैतिक दल अपने राजनैतिक दर्शन और विचारधारा के अनुकूल शिक्षा व्यवस्था बनाना चाहते हैं। चूंकि राजनैतिक दलों की प्रभावशक्ति में बदलाव होता रहता है इसलिए किसी भी एक समय में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था, विभिन्न राजनैतिक दर्शनों के एक अजीब मिश्रण से प्रभावित होती है। इसी तरह शिक्षाविदों के दर्शन और दृष्टि में भी व्यापक बहुलता है। जिसकी वजह से जो वास्तविक प्रभाव शिक्षा व्यवस्था पर पड़ता है वह किसी एक का न होकर एक प्रकार के समझौते का मिश्रण होता है। सच कहा जाए तो शिक्षा व्यवस्था के नियंत्रण के कई आयाम स्तर, सोपान एवं पहलू हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाने वाले शिक्षा व्यवस्था को अपने ढंग से प्रभावित करने की कोशिश करते हैं। राष्ट्रीय पाठ्यक्रम का ढांचा बनाने वाले अपने ढंग से। इसी तरह पाठ्यक्रम बनाने वाले,

पाठ्य पुस्तक बनाने वाले, शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाले शिक्षक, शिक्षा प्रशासक सब अपने–अपने स्तर पर अपने–अपने ढंग से शिक्षा व्यवस्था पर प्रभाव डालने में लगे रहते हैं। इस तरह ये सभी नियंता की श्रेणी में आते हैं। किसका कितना नियंत्रण है, यह नाप लेना या जान लेना भी अत्यंत कठिन है। चूंकि शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित और नियंत्रित करने में लगे हुए ये सब लोग एक–दूसरे के साथ नहीं हैं, बल्कि कई श्रेणियों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में आपस में विरोधी हैं, इसलिए किसी एक की मंशा सफल नहीं हो पाती। सार यह है कि शिक्षा व्यवस्था नियंत्रण करने के लिए गढ़ी जाती है, पर वे उसमें सफल नहीं हो पाते। यह तो अच्छी बात है।

इसे सरलता से दूसरे ढंग से भी व्यक्त किया जा सकता है। वयस्कों द्वारा बच्चो को अपने ढंग से सीखने या विकसित होने का अवसर न देना। वयस्कों की मर्जी के मुताबिक विकसित करने के प्रयास का अस्त्र, शिक्षा व्यवस्था है।

प्रगतिशील शिक्षा विचारक और शिक्षाविद् यद्यपि यह दावा करते हैं कि वे विद्यार्थियों को अपने ढंग से सीखने और ज्ञान अर्जन करने के पक्षधर हैं, परंतु वास्तविकता में यह बात केवल शिक्षण पद्धति (पेडागॉजी) तक ही सीमित रह जाती है।

निःसंदेह हर बच्चे को अपने ढंग से, अपने परिवेश में, अपने अनुभव में जो आए, उसे वह जिस तरह, जब सीखना चाहे, सीखने के लिए उसे चिड़िया की तरह खुला नहीं छोड़ा जा सकता। उसी तरह दूसरी ओर एक पूरी नियंत्रित और बाध्यकारी या बंधनकारी शिक्षा व्यवस्था जिसके खिलाफ यह लेख है, को भी बिल्कुल नकारा नहीं जा सकता।

यक्ष प्रश्न यह है कि कौन सी शिक्षा अच्छी हो सकती है? वह शिक्षा जो पिंजड़े में बंद भी न हो और जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से व्यक्ति के स्वतःस्फूर्त प्रस्फुटन, विकास, जिज्ञासा, मौलिकता, रचनात्मकता को विभिन्न प्राचीरों में कैद न करे। परंतु साथ ही पूरी तरह अव्यवस्था की गोद में भी न छोड़ दे। वह लचीली शिक्षा जो बच्चों को उड़ती चिड़िया की तरह मुक्त कर दुनिया और अपनी जिंदगी में स्वच्छंद विचरण की मनोवृत्ति, कौशल, इच्छा और शक्ति दे। केवल एक संकुचित पक्ष का निर्धारण न करे। इस यक्ष प्रश्न का उत्तर हम तभी दे सकते हैं जब हम आज की शिक्षा व्यवस्था को उसके नियंत्रण की मंशा के चलते नकार दें और एक लचीले शिक्षा संसार की रचना करें। इस शिक्षा संसार का सपना वे सब देख सकते हैं जिन्होंने ध्यान और बारीकी से विद्यमान शिक्षा व्यवस्था के द्वारा खड़ी की गई अभेद्य प्राचीरों को समझा हो और स्वीकार किया हो। मेरा भी दीवारविहीन इस खुले शिक्षा संसार का सपना है जिसकी झलक किसी सीमा तक इस लेख में है।

शरद चन्द्र बेहार : सेवानिवृत्त पूर्व मुख्य सचिव, मध्यप्रदेश सरकार। वर्तमान में भारतीय शिक्षा संस्थान, पूना के अध्यक्ष हैं।